International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 01-11-2018; Accepted: 03-12-2018
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 1; January 2019; Page No. 01-05

लक्ष्मीकान्त वर्मा : सम्पादकीय एवं पत्र साहित्य में अभिव्यक्त कथात्मक चिन्तनधारा एवं दर्शन का समीक्षात्मक अध्ययन

अर्चना मिश्रा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
लक्ष्मीकान्त वर्मा के साहित्य में लेखकीय यथार्थ प्रकट हुआ है। इनकी प्रत्येक साहित्यिक विधा यह संकेत देती है कि रचनाकार के लिए जिन्दगी कहानी से बहुत बड़ी है। वर्मा जी की गद्यविधा, कहानी, नाटक, उपन्यास, पत्र–संवाद, सम्पादकीय और पत्र साहित्य विचारों की भीड़–भाड़ में पड़ाव लेकर अग्रगामी हुआ है। इनकी रचनात्मकता ऐसे चरित्रबोध को प्रकट करती है जो अपने विचारों का मूल्य चुकाने में विचलित नहीं होते। समीक्षकों ने इन्हें विचारात्मक साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया है।
लक्ष्मीमान्त वर्मा जी लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, मोती लाल नेहरू, लाल लाजपत राय, रामबिहारी बोस, सुभाष चन्द्र बोस, जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, हकीम अजमल खाँ, आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जमनालाल बजाज, सरोजिनी नायडू, गणेश शंकर विद्यार्थी, पराडकर, सी.वाय. चिन्तामणि, जय प्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया और उस युग की ऐसी अनेक विभूतियों के सान्निध्य में रहें।
लक्ष्मीकान्त वर्मा जी पत्रलेखन के लिए विख्यात थे, उनके पत्रों का ऐतिहासिक महत्व हैं और साहित्यिक महत्व भी है। अपने समय के संघर्ष और युगबोध को इन पत्रों में सजीव अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। जमाने के युग पुरुषों और सामान्य जनों से उनका समान संपर्क था। इस सम्पर्क की अभिव्यक्ति का अपना महत्व है।

मूल शब्द : लक्ष्मीकान्त वर्मा, सम्पादकीय, पत्र, अभिव्यक्त, चिन्तनधारा, दर्शन।

प्रस्तावना
प्रो. वर्मा ने सम्पादकीय एवं पत्र साहित्य के क्षेत्र में एक तहलका मचा दिया था। इनकी सृजनात्मक भाषा उनके मानस जगत को स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखती है। इस सन्दर्भ में हम उनकी पूर्वी सौन्दर्य चेतना का परिचय भी पा सकते है। उनकी सौन्दर्य–चेतना के आरम्भिक बिन्दु छायावादी काव्य रचनाओं में है। जो काव्य कलावादी प्रवृत्ति से प्रभावित है। राष्ट्रीय धारा द्वारा प्रभावित काव्य रचनाओं में वह पुनः प्रयोजनवादी मानवतावादी सौन्दर्य अध्येता जान पड़ते है। किन्तु समसामयिक काव्य रचनाओं में हमें उनके नितान्त नये रूप के दर्शन होते है। यहाँ उनकी सौन्दर्य चेतना प्रभाववादी न होकर रचनात्मक अधिक है। इसलिए भी उनकी काव्य भाषा का शब्द विधान जीवन सापेक्ष है। काव्य भाषा के आधार पर उनकी सौन्दर्य चेतना निरन्तर गतिशील और सक्षम जान पड़ती है।''[1]
शैक्षणिक सम्पादकीय के अन्तर्गत वर्मा जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार हैं। वे स्वयं उच्च शिक्षा से जुड़े हुए थे। सम्पादकीय के क्षेत्र में एक शिक्षा शास्त्री के रूप में उन्हें पाना कम दिलचस्प नहीं है। वर्मा जी की सम्पादकीय शैली काफी अभिव्यंजनात्मक है। चित्रमयतापूर्ण अथवा प्रतीक और बिम्ब प्रस्तुत करने वाली भाषा उनकी निर्मित है। 'नये प्रतिमान–पुराने निकष' में यह शैली स्पष्टतः परिलक्षित होती है। इसके मूल में कुछ विद्वान् फारसी शैली का प्रभाव ढूढ़ते है। उर्दू की मुहावरेदानी, लक्षणिकता, व्यंग्योक्तियाँ और मनोरम सूक्तियों के सटीक प्रयोगों के कारण लक्ष्मीकान्त वर्मा जी की भाषा अत्यन्त स्फूर्तिमयी और जीवन्त दिखायी पड़ती है। नये फैशन के प्रति व्यंग्य–आक्रोश व्यक्त करते समय उनकी भाषा बहुत पैनी हो जाती है। देशी शब्दों और कहावतों का प्रयोग तो लक्ष्मीकान्त वर्मा जी की अपनी विशेषता ही है। ये प्रयोग धरती की सौंधी गन्ध से ओत–प्रोत है। और इनके कारण भाषा में एक अद्‌भुत प्राणवत्ता दिखाई पड़ती ळें[2]
राष्ट्रीय परम्परा में उनकी टिप्पणी अवलोकनीय है। ''हम भी बड़े आनन्द के साथ आप लोगों की महिमा गाते हैं, पर झोपड़ी में जब हमारी स्त्री हमसे पूछती है कि क्या अब इस नये कानून से हमें भर पेट खाने को मिलेगा? शिक्षा की आवश्यकता है, हम भी समझते है, पर खाली पेट तो शिक्षा नहीं भर सकेगी। शिक्षा के लिए जो समय चाहिए, उस समय हम कठिन परिश्रम से थके हुए रहते है।''[3]
1919–20 की बात है जब महात्मा गाँधी राजनीति व स्वतन्त्रता आन्दोलन में पूर्णरूपेण समर्पित होकर आ गये और उन्होंने देश के क्रान्तिकारी युवकों को राष्ट्रीय जागरण में कूद पड़ने का आह्‌वान किया। तभी माखनलाल जी, माधवराव सप्रे, द्वारा सम्पादित पत्र ''कर्मवीर'' में सहायता करने लगें। पत्र को तत्कालीन स्थितियों के अनुरूप अपने ओजस्वी एवं देशभक्ति पूर्ण लेखों से सुशोभित कर ख्याति दिलाई।
''प्रभा और ''प्रताप'' में लेखन का अनुभव तथा ''कर्मवीर'' के कुशल सम्पादन से पं. माखनलाल चतुर्वेदी का नाम साहित्यिक जगत् के साथ–साथ पत्रकारिता में भी ध्रुव तारें की तरह चमकने लगा। ''कर्मवीर'' के लेखों से ब्रितानी सरकार को उजाड़ फेंकने व जनजागरण पैदा करने में माखनलाल सतत् प्रयासरत रहें। परिणाम स्वरूप विद्रोही साहित्यकार व पत्रकार के रूप में जेल के सीखचों में बन्द भी होते रहे।
''प्रताप'' के लेखों की फैलती चिनगारी से जहाँ एक ओर गणेश शंकर विद्यार्थी भारतीयों में राष्ट्रीय जागरण का ज्वाल जला रहे थे वही माखनलाल अपनी ओजस्वी पत्रकारिता तथा अपनी राष्ट्रीय चेतनायुक्त कविताओं से जवानी को मरण का त्यौहार मनाने का आह्‌वान भी कर रहे थे।
''कर्मवीर'' पत्र हिन्दी का एक ऐसा सशक्त प्रभावशाली और प्रसिद्ध पत्र बना कि उसने देशी रियासतों के दुराचारी राजा–महाराजाओं, सामन्तों, जमींदारों के खिलाफ आवाज उठायी उनकी राष्ट्रविरोधी गति–विधियों तथा निर्धनों पर उनके अत्याचारों का भण्डाफोर किया। डॉ. आत्माराम मिश्र ने लिखा है कि ''मध्य भारत के एक महाराजा ने उन्नीस हजार रूपये देकर कर्मवीर का मुहँ बन्द करना चाहा, किन्तु चतुर्वेदी जी ने आर्थिक कठिनाइयों के होने पर भी इस धनराशि को ठुकरा दिया और कर्मवीर का ईमान बेचने से इन्कार कर दिया।''
पत्रकारिता के क्षेत्र में चतुर्वेदी जी ने जब से अपने कदम बढ़ाये थे

उनका यह मानना था कि वे या तो पत्रकारिता के माध्यम से देश को जगा देंगे, अंग्रेजों की नाक में दम कर देगें या फिर अपनी लेखनी को राष्ट्र के लिए समर्पित कर देंगे। इसी भावना से वे समर्पण और बलिदानी वृत्ति के गायक बन गये थे। गंगा प्रसाद गुप्त बरसैय्या का कथन है कि ''जेल की यातनाएँ सहकर अनेक बार पुलिस को धता बताकर गुप्त योजनाओं में सक्रिय योगदान देने वाले चतुर्वेदी जी कभी चुप नहीं बैठ सके। साहित्यिक क्षेत्र में केवल काव्य रचना करके शाब्दित क्रान्ति करने वालो में चतुर्वेदी जी नहीं थे। ''प्रताप'' और ''कर्मवीर'' के द्वारा देश की तत्कालीन जो सेवाएँ उन्होंने की, वे सभी की बूते की नहीं थी। चवुर्वेदी जी तो मानकर चले थे कि उनका एक पैर जेल के भीतर है और दूसरा प्रेस में। एक हाथ में कलम और तलवार है तो दूसरे में गोपनीय योजनाएँ। यह थी उनकी पत्रकारिता की गरिमा और राष्ट्रीयता की चेतना भरी जिन्दगी। एक–एक पग उनका राष्ट्र के लिए उठता रहा तो हर लेखनी क्रान्ति और राष्ट्रीय जागरण का स्वर भरती रही। एक सम्पादक की बेबाक और सीधे सरकार पर प्रहार करने की तीखी टिप्पणियों के कारण कर्मवीर उन दिनों हिन्दी पत्रकारिता की अगुवाई कर रहा था। ऐसी निर्भीक पत्रकारिता का उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ था इसीलिए माखनलाल और कर्मवीर एक दसरे के पर्याय बन गये थे और खण्डवा इन दोनों की कर्मस्थली के रूप में प्रसिद्धि पा चुका था। डॉ. भगवान दास तिवारी ने लिखा है कि ''प्रभा'' ''प्रताप'' और ''कर्मवीर'' के सुदीर्घ सम्पादन काल में उन्होनें अपने पत्रकार की प्रतिष्ठा को कभी भी आँच नही लगने दी। साँच को आँच नहीं यही उनका निश्चित मत था और इसीलिए अपनी सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा के साथ उन्होंने अपने विचारों और मतों को सम्पादकीय टिप्पणियों और लेखों में ओजपूर्ण तथा प्रवाहमयी भाषा में लिखा। राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक विचारधारा के आदर्शवादी पत्रकार होने के कारण उन्होंने दो टूक बात करने में कभी भी संकोच या झिझक का अनुभव नहीं किया। उनकी स्पष्टवादिता के पीछे उनका मनोबल, आत्मबल और सबसे बड़ा सत्यबल था इसीलिए चाहें अंग्रेजी शासन हो, चाहे देशी रियासत, किसी की भी लल्लो–चप्पों उन्होंने नहीं की। अनीति का विरोध करना, असत्य पर प्रहार करना, पाखण्ड का भाण्डा–फोड़ करना तथा सत्य और न्याय के लिए आग्रह करना उनकी सम्पादन कला के चार मूलभूत सिद्धान्त थे।

पत्र के लिखने वाले और पढ़ने वाले के बीच तीसरा व्यक्ति न हो, तभी वह आत्मीय वार्तालाप बन सकता है। मध्यस्थ के होने पर उसकी हार्दिकता नष्ट हो जाती है और वह औपचारिक वार्ता मात्र बनकर रह जाता है। मध्ययुग में पत्र की अलंकृत शैली में लिखने फैशन का चल पड़ा था और पत्र में अपनी विद्वता को प्रकट करने में लोग होड़ लगाया करते थे। परन्तु हर्ष की बात है कि अब पत्र के सहज और आत्मीयतापूर्ण होने पर अधिक बल दिया जाता है।

पत्र–साहित्य को सामान्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है –

1. वे निजी पत्र जो प्रकाशन के उद्देश्य से नहीं लिखे जाते।
2. वे पत्र, जो बाहर से तो पत्र दिखाई पड़ते हैं परन्तु वस्तुतः पत्र शैली में लिखी साहित्यिक रचनाएँ होती हैं। इस प्रकार के पत्रों में 'भारतमित्र' में प्रकाशित होने वाले बालमुकुन्द गुप्त कृत 'शिवशंभु के चिट्ठे' व कौशिक द्वारा 'चाँद' में प्रकाशित होने वाली 'दुबेजी की चिट्ठी' के नाम लिये जा सकते हैं। पत्राकार प्रकाशित ये कृतियाँ सम्पूर्ण पाठक वृन्द के लिए लिखी गई थी।

हिन्दी का पत्र साहित्य किसी का पुस्तकाकार प्रकाशित पत्र–साहित्य बहुत कम है। यदा–कदा पत्र–पत्रिकाओं में अवश्य ही पत्रों का प्रकाशन दिखाई दे जाता है। पुस्तकाकार प्रकाशित पत्र–साहित्य इस प्रकार है– श्री बैजनाथ सिंह विनोद ने 'द्विवेदी पत्रावली' तथा 'द्विवेदी युग' के साहित्यकारों के कुछ पत्र, प्रकाशित कराए हैं। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'पं. पद्मसिंह शर्मा के पत्र' श्री अमृतराय ने 'चिट्ठी पत्री के नाम से प्रेमचन्द के पत्र' प्रभाकर माचवे ने 'जैनेन्द्रजी के विचार' नाम से जैनेन्द्र के पत्र तथा बच्चनजी के 'बच्चन के नाम पन्त के सौ पत्र' व बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र' प्रकाशित कराये हैं। पत्र–साहित्य की अन्य कृतियाँ हैं– श्री जानकी बल्लभ शास्त्री की 'निराला के पत्र' जीवन प्रकाश जोशी की 'बच्चन पत्रों में आदि। निश्चय ही पत्र–साहित्य की इस विधा का भविष्य उज्ज्वल है। डायरी यों तो किसी व्यक्ति की नितान्त वैयक्तिक सम्पत्ति होती है, किन्तु प्रकाश में आने के बाद अपनी सार्वजनिक एवं सार्वकालिक भावनाओं के कारण साहित्य–जगत की सम्पत्ति बन जाती है। यदि डायरी लेखक कोई ख्याति–लब्ध अथवा महान् व्यक्ति हुआ, तब उसकी डायरी और अधिक लोकप्रियता अर्जित कर लेती है। उदाहरण के लिये महात्मा गाँधी तथा टालस्टाय जैसी महान् विभूतियों डायरियाँ ली जा सकती हैं। 'डायरी' अंग्रेजी का शब्द है और लैटिन भाषा के 'डायस' से बना है। 'डायस' शब्द संस्कृत के दिवस शब्द का समानार्थक है। डायरी के पर्यायवाची शब्द दैनिक, रोजनामचा, दैनन्दिनी आदि है। इसमें तिथिवार दैनिक जीवन की महत्वपूर्ण घटनायें अंकित की जाती है। यों तो हर्ष, विषाद, उल्लास, नैराश्य आदि भावनाओं को उत्पन्न करने वाली घटनायें सभी व्यक्तियों के जीवन में रोज ही घटा करती है, परन्तु सामान्य व्यक्ति उन्हें भूल जाता है, जबकि साहित्यकार के संवेदनशील ह्रदय में उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने की आतुरता जाग उठती है। इन्हीं क्षणों में डायरी लिखी जाती है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में – 'किसी दैनिक घटना के सन्दर्भ में अपने मन की उधेड़–बुन व्यक्त करने के लिए डायरी सर्वोत्तम माध्यम है।' यह प्रामाणिक भी बहुत अधिक है क्योंकि विशुद्ध डायरी इस उद्देश्य से कभी नहीं लिखी जाती है कि बाद में उसका प्रकाशन होगा। यह तो ह्रदय की भावनाओं का निश्छल प्रकाशन होती है।

हिन्दी का डायरी साहित्य–हिन्दी में स्वतंत्र कृति के रूप में डायरी साहित्य बहुत कम लिखा गया है। घनश्यामदास बिड़ला की डायरी 'डायरी के पन्ने' नाम से प्रकाशित हुई है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की 'मेरी कालिज डायरी', सुन्दर लाल त्रिपाठी की 'दैनन्दिनी', सियारामशरण गुप्त की 'दैनिकी' इस विधा की अन्य महत्वपूर्ण रचनायें हैं। इधर नए लेखकों में मोहन राकेश, नरेश मेहता, अजित कुमार और लक्ष्मीकान्त वर्मा के डायरी के पृष्ठ भी प्रकाशित हुए हैं।

पत्र–पत्रिकाओं में कभी–कभी किसी पुराने साहित्यकार की डायरी के अंश भी प्रकाशित दिख जाते हैं। सम्भव है हिन्दी गद्य की प्राचीन विभूतियों–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आदि–ने भी डायरियाँ लिखी हैं, किन्तु अभी वे प्रकाश में नहीं आई हैं। यदि ऐसा हो सका तो साहित्याकाश में एक नवीन ज्योति उद्भाषित हो उठेगी। ''कलात्मक सौन्दर्य, अनुभूति–खण्डों की तीव्रता, शैली की मूर्तिमत्ता एवं व्यंग्यात्मकता के कारण उत्पन्न प्रवाह आदि विशेषताओं से युक्त डायरियाँ ही वास्तव में इस गद्यविधा के स्वर्णिम इतिहास की सृष्टि कर सकी हैं। ऐसी ही डायरियाँ इस गद्य–विधा के अन्तर्गत आती हैं।

लक्ष्मीकान्त वर्मा के सम्पादकीय एवं पत्र साहित्य में अभिव्यक्त कथात्मक चिन्तनधारा एवं दर्शन नये प्रतिमान : पुराने निकष में देखा जा सकता है।

'आधुनिकता' : 'कुछ विचार सूत्र' के माध्यम से उनकी चिन्तनधारा और दार्शनिक आयोजन का मूल्यांकन किया जा सकता है। जब वे लिखते हैं कि ''आधुनिकता का कोई भी अर्थ बिना मानव के स्वाभिमान और व्यक्ति के स्वातंत्र के सम्भव नहीं है। आज के उगते हुए और विकासशील जनतंत्र की उचित परिणति भी इसी में है कि हम मानव–स्वाभिमान और व्यक्ति की स्वतंत्रता को अधिक से अधिक महत्व प्रदान करें। वास्तव में जनतांत्रिक जीवन–पद्धति में व्यक्ति एक इकाई है जो जितनी अधिक स्वतंत्रता और सम्मान को साधिकार भोगता है, उतना ही वह जनतान्त्रिकता की वास्तविक धारणा को वहन करने में सक्षम होता है। मैं तो व्यक्तिगत रूप से इस स्वतंत्रता को उस सीमा तक ले जाना चाहता हूँ जहाँ अधिकार

रूप में, मनुष्य को जीने से लेकर आत्महत्या तक की स्वतंत्रता हो। आधुनिकता के सन्दर्भ में यह अधिकार मनुष्य को मिलना ही चाहिए; यह बात अलग है कि कोई इस अधिकार का उपयोग करता है या नहीं। स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ और व्यक्ति–मर्यादा की पूर्णता इस अधिकार में ही व्यक्त होते हैं। मानव–जीवन की अन्तिम परिणति अभिव्यक्ति है। किसी एक को यदि उस अभिव्यक्ति का माध्यम मृत्यु ही प्रतीत होता हो, तो उसे उस माध्यम को अर्थात् मृत्यु को वरण करने का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए।''[4]

'वैयक्तिक तत्वों की प्रतिष्ठा' के संदर्भ में वर्मा जी का सम्पादकीय कथात्मक चिन्तनधारा इस प्रकार व्यक्त हुआ है – ''आज इस अध–भोगे युग में हम सब एक प्रकार से पूर्णानुभूतियों से वंचित व्यक्तित्व है, खण्डित और अपूर्ण–हम केवल अपनी सम्पर्कात्मकानुभूति से ही शायद बाह्यागत को जानते हैं। यह सम्पर्कात्मकानुभूति वैयक्तिक ही है और इसकी सार्थकता और प्रामाणिकता भी व्यक्ति से ही विकसित हो सकती है –होती है। आज के युग सन्दर्भ में सबसे बड़ी समस्या व्यक्ति की ही है। जो कुछ भी समवेत है वह यन्त्रवत हो गया है या वह सामूहिक स्तर पर केवल एक भीड़ का आचरण बन गया है।''[5]

इसी प्रसंग में उनकी सम्पादकीय दर्शन में यह स्पष्ट होता है कि – ''आधुनिकता में एक ऐतिहासिक क्रम और इतिहास–बोध की ग्राह्यता परिलक्षित है, किन्तु इतिहास का लाक्षणिक रूप आज सम्पूर्ण मानवता को विषाक्त जर्जरता की ओर ही ले जा रहा है। इतिहास एक आत्मग्राही दृष्टि भी है और एक स्मृति–विकृति भी है। विकृत स्मृति से घायल मानव–मस्तिष्क में केवल काल का आतंक रहता है, उसका प्रवाह नहीं। स्मृतियों से मुक्त जीवन शायद मानव–सभ्यता की और मानवीय चेतना की समस्त भाव–स्थितियों की मूर्त सजीवता का द्योतक है। स्मृति जब अभिप्राय रूप में किसी भी चेतना पर छा जाती है तो समस्त चिन्तन–शक्ति रुग्ण हो जाती है।''[6]

''साहित्य किस के लिए? इस प्रसंग में लक्ष्मीकान्त वर्मा का कथन है कि – ''साहित्य को तो केवल अनुभूति–प्रधान होनाा चाहिए। यदि वह अनुभूति–प्रधान है और उसमें आत्मोपलब्धि के तत्व विद्यमान हैं तो वह उन सबका अपना साहित्य है जो आग, सुन्दर वन और जलने के दर्द से सम्बद्ध है। फिर, साहित्य मनोरंजन करता है या नहीं, निर्माण करता है या नहीं, देश का यश गाता है या नहीं, प्रगति का स्थापित मानदण्ड मानता है या नहीं, ये सब गौण हो जाते हैं। वास्तविक समस्या तो यह है कि साहित्य, रचनाकार का अनुभूत–सत्य, आत्मोपलब्ध सत्य है या नहीं। यदि वह उसका अनुभूत–सत्य है तो निश्चय ही वह मानव–सत्य है, और यदि वह मानव–सत्य है तो निश्चय ही वह सम्पूर्ण मानवता के लिए है, उसकी सम्पूर्ण आस्था के लिए है।''[7]

'साहित्य में शिव की कल्पना' में वर्मा जी के सम्पादकीय साहित्य में उनका दार्शनिक पक्ष उजागर हुआ है। इस संदर्भ में उनकी स्वीकारोक्ति स्पष्ट है– ''साहित्य एक स्वतंत्र भाव–स्रोत की मुक्त अभिव्यक्ति है। इस मुक्त–भावना का केन्द्र–बिन्दु है मानव–सत्य, मानव–चेतना और मानव–अनुभूति। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि अनुभूतिपूर्ण रचना में शिवतत्व सदैव वर्तमान ही रहता है। उसकी स्थापना अलग से न तो हो सकती है और न होना सम्भव ही है। इसीलिए उससे पृथक किसी भी तत्व पर अलग से विचार करना या उसको प्रतिष्ठित करने का प्रयास करना साहित्येतर होगा। 'शिव ही वरेण्य है' में 'ही' पर अधिक बल देने से विकृतियों के विकसित होने की सम्भावना अधिक होगी। किसी भी देश में जहाँ साहित्य प्रशासन द्वारा अनुशासित होता है वहाँ इस प्रकार की विकृतियों का विकसित होना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए साहित्य में यदि शिवतत्व को अधिक विकसित करने के प्रयास में लेखक और कलाकार के व्यक्तित्व की स्वतंत्रता में अनुभूत सृजनात्मकता को अनुशासित किया जायेगा या 'साहित्य में शिव ही वरेण्य है' की कुण्ठा से कलाकार–साहित्यकार की सृजनात्मकता को कुण्ठित कर दिया जायेगा तो निश्चय ही उससे साहित्य का अहित अधिक होगा। स्वतंत्र भाव–धारा में रचनाकार जिस भी अनुभूत–सत्य का साक्षात्कार करता है वह स्वयं उसके जीवन में उद्‌भूत शिवतत्व का परिचायक होता है। इसलिए मैं समझता हूँ कि वह अनुभूत–सत्य, जो साहित्य में अभिव्यक्त होता है, शिव होता ही है। साहित्य में यदि अनुभूति को प्रधानता मिलेगी तो निश्चय ही उस अनुभूति–प्रधान साहित्य का महत्वपूर्ण अंश शिवतत्व से ओत–प्रोत होगा।''[8]

'नया साहित्य : अर्थ–संदर्भ' के परिपालनार्थ साहित्यकार वर्मा जी का दार्शनिक पक्ष इस प्रकार प्रकट हुआ है– ''मूल्य की दृष्टि से भी अनुभूति मूल्यवान होती है। भावुकता का मूल्य केवल सिद्धान्त तक ही सीमित रहता है। आँखों में रो देना आसान है, लेकिन रोने को झेल लेना कठिन। एक औपचारिक है, दूसरा साक्षात्कार की अनुभूति। आँखों से आँसू बह जाना एक बात है, आँसू को पी जाने के बाद हंस देना दूसरी बात। मेरी समझ में नहीं आता, इस औपचारिक और बौद्धिक भेद को हम स्वीकार क्यों नहीं कर पाते। अनुभूति में एक बौद्धिक प्रक्रिया होती है जो सत्य को परखने की दृष्टि देती है। नये साहित्य के समस्त माध्यम, प्रतीक, उपमा, उपमान, केवल प्रतीकात्मकता तक ही सीमित नहीं रहते, उनकी व्यंजना का अधिकांश इसीलिए छिछली भावुकता भी नहीं होती। वह सार्थक होती है; क्योंकि बौद्धिकता उसे परिष्कृत करके संशोधित करती है, उसे सार्थक बनाती है। अनुभूति जीवन को समग्रता के रूप में देखती है।''[9]

'श्लीलता–अश्लीलता : एक विवेचन' सम्पादकीय संदर्भ में वर्मा जी की लेखकीय भावना निम्न रूपों में प्रतिफलित हुयी है। यह सच है कि आज के कलाकार के पास अतीत का गौरव और उसका नितान्त आदर्शमय मोह नहीं है, किन्तु यह भी सत्य है कि आज के विकसित यथार्थ को असम्पृक्त होकर देखने के स्थान पर या तो वह उसके मोह में पड़ जाता है या उसकी चकाचौंध से अपने विवेक की दृष्टि खो देता है। दोनों ही स्थितियों में वह कला के पक्ष का उतना सजीव समर्थन नहीं कर पाता।

अमरकान्त की प्रसिद्ध कहानी 'हत्यारे' इसी कमी का शिकार है। वे 'बीटनिक कल्ट' के लड़के, जो सहसा किसी अर्धवेश्या का भोग करके बिना भुगतान किये भागते हैं, वैसे नहीं हैं जैसा कि अमरकान्त ने दर्शित किया है। उनके इस कठोरपन के पीछे एक इतिहास और संस्कार का भग्नावशेष है। अमरकान्त ने जिस जीवन को प्रस्तुत किया है, वह प्रवाहशील 'पैनेल' के सन्दर्भ से टूटा होने के कारण अधूरा है और इसीलिए उसको पढ़कर एक प्रकार की जुगुप्सा–सी जगती है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह केवल एक रेगिस्तान से खींचकर लाये गये पात्र हैं, पागल हैं, लापरवाह, गैरजिम्मेदार और व्यभिचारी हैं। यदि मात्र इतना ही कहना था तो फिर अमरकान्त को उस कहानी को लिखने की आवश्यकता क्या थी? और अगर उसकी आवश्यकता थी तो लेखक ने उसके सम्पूर्ण सत्य को उद्‌घाटित करना क्यों आवश्यक नहीं समझा? यदि वह उनके सामर्थ्य में नहीं था तो फिर उन्होंने उस विषय को अपनी कथा का सूत्र क्यों बनाया?

ठीक इसी प्रकार उषा प्रियंवदा की प्रसिद्ध कहानी 'वापसी' है जिसमें लेखिका की दृष्टि उसी प्रेमचन्दकालीन युग के विघटित आदर्श की याद दिला देती है। उषा प्रियंवदा इस सम्पूर्ण वातावरण में आज के जीवन का विपर्यय ही दिखला पाती है, उसके मूल्यों की ओर वे इंगित नहीं कर पातीं। यह कहानी भी ठीक उसी प्रकार अधूरी है जैसे प्रेमचन्द की कहानी।

मोहन राकेश की 'आर्द्रा' या 'मिस पाल' कहानी को लीजिए। ये दोनों कहानियाँ नयी कहानी मानी जाती हैं, किन्तु इन दोनों में वही रोमानी दृष्टि, वही रोमांचवादी शैली और एक टूटती हुई जीवन–पद्धति के प्रति वही व्यामोह है जो हमें प्रायः किसी भी कहानी में मिल जाता है। मोहन राकेश की भावुकता मूलतः आधुनिकता–विरोधी है।

'आर्द्रा' कहानी में उनकी सहानुभूति उसे कम्युनिस्ट पुत्र के प्रति अधिक तीव्रता से व्यक्त हुई है जो मद्रास में रहता है; किन्तु उसी माँ के उस पुत्र के प्रति नहीं जो पंजाब में एक गजटेड अफसर है। उसकी अपनी सीमाएँ और मर्यादाएँ हैं। माँ की सत्रहवीं सदी की ममता के प्रति लेखक की भावुकता तो दीखाई है किन्तु उस भाई के प्रति उसकी सहानुभूति नहीं है। जो एक अफसर होने के बावजूद माँ के प्रति बिना भावुक हुए श्रद्धालु है।''[10]

'मानव मूल्यों के संदर्भ में लघु–मानव की कल्पना' के परिप्रेक्ष्य में कथाकार लक्ष्मीकान्त वर्मा का कथन है कि ''आज के संक्रान्ति–युग की सबसे बड़ी विषमता यह है कि हमारे पास न तो सुख को भोगने की दृष्टि है और न दुःख को भोगने का साहस। सुख को सार्थक रूप में भोग सकने की भी क्षमता उसी में होती है। जो दुःख को भोगने की एक दृष्टि विकसित कर लेता है। वे आगे अपनी सम्पादकीय टिप्पणी लिखते हुए बताया है कि – ''सबसे पहले प्रगतिवादी समीक्षक नामवर सिंह ने 'लघु–मानव' की व्याख्या को खण्डित करते हुए उसे 'छोटा आदमी' की संज्ञा देकर निरर्थक बताने की चेष्टा की थी। उनका यह कहना उचित ही था, क्योंकि प्रगतिवाद का जन्म ही लघु–मानव की शव–क्रिया करके किया गया था। 'प्रोलितारिएत' तानाशाही के जन्म के साथ जो संस्कार जनमे थे, स्तालिन के व्यक्तित्व उपासना की परम्परा ने जो नीवें भारत में डाली थीं, उनके समक्ष लघु–मानव की स्थापना वैसी ही थी जैसे किसी बड़े ठाट–बाट वाले के बगल से कोई नितान्त साधारण जन सिर ऊँचा किये, बिना उसकी नोटिस लिये निकल जाये। वस्तुतः लघु–मानव का जन्म ही उस समय हुआ था जब तमाम सड़कें बन्द थीं, रास्तों पर पहरा था, पुलिस की सीटियाँ बज रही थीं, ट्रैफिक बन्द था और किसी भी व्यक्ति को, जो उस रुकावट की उपेक्षा करके निकलने की चेष्टा करता, गोली से समाप्त कर देने की सम्भावनाएँ थीं।[11]

'कवि सत्य : एक दृष्टिकोण' के माध्यम से वर्मा जी ने यह स्पष्ट किया है कि– ''कवि सत्य मूलतः व्यक्तिगत होता है। व्याप्त परम्परा और संस्कार की सीमाओं का अतिक्रमण करके कवि सूक्ष्म दृष्टि तथा अपनी आत्म–स्थापना की स्वीकृति के आधार पर केवल व्यक्तिगत स्तर पर कुछ नये सन्दर्भ और नये परिवेशों का परिचय पाता है। वस्तुतः यह परिचय, यह स्वीकृति, यह दृष्टि और यह परिवेश उसका अपना निजी, नितान्त व्यक्तिगत सत्य होता है। इसीलिए प्रायः वह अपने व्यक्तिगत प्रतीकों (प्राइवेट सिम्बल्स), व्यक्तिगत बिम्बों (प्राइवेट इमेजेज) और व्यक्तिगत आग्रहों (प्राइवेट एसेर्शन्स) की भाषा, शैली और व्यंजनाओं में बोलता, कहता और समझता है। उसकी अपनी पीड़ा होती है, जो वेदना और मर्म के स्तरों पर मूलतः केवल उसकी अपनी होती है।''[12]

'ताजी कविता : कुछ जोड़ बाकी' में रचनाकार की विचारोन्मुखी चेतना प्रत्यक्ष हुई है। आज यह निश्चित सत्य है कि नयी कविता का आन्दोलन किसी भी प्रकार से नयेपन का आन्दोलन नहीं रह गया है। अब नयी कविता प्रतिष्ठित हो चुकी है। उसके अन्तर्गत अब अच्छी कविताएँ लिखी जाने लगी हैं। नयी कविता की शब्दावली, उसकी बिम्ब–योजना, उसके प्रतीक और उसकी विभिन्न शैलियों के रूप स्थापित हो चुके हैं। उसकी रीति–विधि, उसकी भावुकता, उसकी अभिव्यक्ति सबकी सब नयी प्रवृत्ति की अपेक्षा पुनरावृत्ति की ओर उन्मुक्त होकर बढ़ रही है। उसकी प्रतिष्ठा आज इतनी बढ़ गयी है कि आज नयी कविता के नाम पर जो कुछ भी लिखा जा रहा है वह केवल एक शिल्पगत अभ्यास और रोमानी, अर्द्धरोमानी भावोन्मेष की रूढ़िगत अभिव्यक्ति बनता जा रहा है। नयी कविता में जो कुछ प्रयोग का तत्व था वह भी किन्हीं ढीली–ढाली रूप–विधाओं में सीमित होकर कुछ खूंटियों में उलझ गया है।[13]

'अनुभूति और बोधत्रयी' के माध्यम से वर्मा जी ने स्पष्ट किया है कि– ''साहित्य और कला के क्षेत्र में तो अनुभूति का यह योगदान ही कलाकारों के व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने में सफल होती है, किन्तु इस सम्बन्ध में सावधानी बरतने की आवश्यकता है। व्यवस्था को किसी रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त करने से अनुभूति की विशिष्टता नष्ट हो जाती है। अनुभूति का आन्तरिक ढांचा ही आवश्यकतानुसार व्यवस्था स्थापित करता है। उसके लिए किसी बाह्यारोपित व्यवस्था का मानदण्ड कभी भी पर्याप्त नहीं होता। उसकी प्रकृति से जो व्यवस्था उपजती है, वही अनुभूति की आत्ममर्यादा को निर्धारित करती है।''[14]

इसी प्रकार वर्मा जी ने 'अनुभूति : प्रज्ञा और दृष्टि' में अभिव्यक्त कथात्मक चिन्तन धारा एवं दर्शन का प्रतिफलन करते हुए लिखा है कि – ''सम्पूर्ण मानव अनुभूति की प्रक्रिया दो प्रकार से प्रज्ञा को वहन करती है। पहली स्थिति तो परिचयात्मक ज्ञान की है। दूसरी स्थिति अनुभूत सत्य के माध्यम से ज्ञान अर्जित करने की है। परिचयात्मक ज्ञान में हम प्रत्यक्ष अनुभवकर्ता नहीं होते। किसी अनुभूत सत्य को किसी के माध्यम द्वारा हम ग्रहण करते हैं। उसमें स्थिति–विशेष का और हमारा सीधा सम्बन्ध नहीं होता। इसीलिए परिचयात्मक ज्ञान वस्तु–परिचय ही होता है। परिचयात्मक ज्ञान की मूल प्रवृत्ति सूचनात्मक होती है। भौगोलिक ज्ञान से लेकर अन्य प्रकार के ज्ञानों में मूलतः विवरणात्मक रूप में ही हमारी चेतना भाग लेती है। अनुभूत–सत्य का साक्षात्कार इससे भिन्न होता है।''[15]

सन् 1953 ई. में क्षेमचन्द सुमन द्वारा सम्पादित 'जीवन स्मृतियाँ' उल्लेखनीय हैं। इस संकलन के माध्यम से सुमन जी ने साहित्यकारों को आत्मकथा लिखने के लिए पर्याप्त रूप से प्रेरित किया। इससे प्रभावित होकर जैनेन्द्र, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, मैथिली शरण गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि ने आत्मकथापरक रचनाएँ कीं। 1956 ई. में श्रीमती जानकीदेवी बजाज की 'मेरी जीवन यात्रा' प्रकाशित हुई। महिला लेखिका द्वारा लिखी गयी यह हिन्दी की प्रथम आत्मकथापरक रचना कही जा सकती है। सुप्रसिद्ध नाटककार सेठ गोविन्ददास के 'आत्म–निरीक्षण' (1958 ई.) में साहित्यिक एवं राजनीतिक पक्षों का वर्णन मिलता है। सन् 1960 ई. में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'अपनी खबर' प्रकाशित हुई। इसमें उग्रजी के प्रारम्भिक जीवन के इक्कीस वर्षों की कहानी कही गयी है। सन् 1962 ई. में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की 'आत्मकथा' का सम्पादन एवं प्रकाशन किया। बिस्मिल की आत्मकथा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किये गये क्रान्तिसम्मत प्रयासों की कहानी है। शान्तिप्रिय द्विवेदी की 'परिव्राजक की प्रजा' तथा भुवनेश्वर प्रसाद की 'जीवन के चार अध्याय' आदि इसी प्रकार की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

पत्र लेखन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन हैं, किन्तु आज 'पत्रसाहित्य' एक नवीन विधा के रूप में प्रचलित है। इसमें व्यक्ति विशेष के जीवन का अन्तरंग पक्ष प्रकट होता है, जो सामान्यतः अदृश्य रहता है। आधुनिक युग में पाश्चात्य प्रभाव के कारण पत्र विधा को प्रेरणा मिली। अन्य विधाओं की ही भाँति पत्रलेखन भी एक कला है। इसके लिए सहृदयता और कल्पनाशीलता अत्यावश्यक है। कुशल पत्र लेखक अपने पत्रों में अत्यन्त सामान्य समझी जाने वाली बातों को भी अपनी कलात्मकता से चित्ताकर्षक बना देता है। पत्रलेखन में लेखक का व्यक्तित्व प्रमुख होता है। संक्षिप्तता, सरसता और जिन्दादिली एक अच्छे पत्र की प्रमुख होता है। संक्षिप्तता, सरसता और जिन्दालिदी एक अच्छे पत्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं। पत्रलेखन एक आत्मीय वार्तालाप है जो दूरस्थ दो या अनेक व्यक्तियों को समान संवेदनात्मक धरातल पर ला देता है। पत्रसाहित्य में लेखक का व्यक्तित्व अपने सीमित 'स्व' से ऊपर उठकर विशदता को प्राप्त होता है। प्राचीन काल में पत्र सन्देशवाहक अथवा दूत द्वारा भेज जाते थे और ये सन्देशवाहक पत्र पढ़कर सुनाया भी करते थे। बाद में पत्र लिखित रूप में भेजने की परम्परा प्रारम्भ हुई। मध्ययुग में पत्र को अलंकृत शैली में लिखने का फैशन चल पड़ा था और पत्र में अपनी विद्वता प्रकट करने की होड़ लग गयी थी। परन्तु आधुनिक युग में पत्र बातचीत की शैली में लिखा जाता है और उसके सहज तथा आत्मीयता पूर्ण होने पर बल दिया जाता है।

पत्र साहित्य को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है। (1) व्यक्तिगत पत्र और (2) साहित्यिक पत्र। व्यक्तिगत पत्र लेखक द्वारा अपने सगे सम्बन्धियों और मित्रों को लिखे जाते हैं। इन पत्रों में गोपनीयता भी प्रकट की जाती है। हिन्दी के व्यक्तिगत पत्रों के संकलन निम्नलिखित हैं– 'द्विवेदी–पत्रावली' (बैजनाथ सिंह विनोद), पं. पद्यसिंह शर्मा के पत्र' (पं. बनारसी दास चतुर्वेदी) 'साहित्यिकों के पत्र' (पं. किशोरीदास बाजपेयी) 'भिक्षु के पत्र' (भदन्त आनन्द कौशल्यायन), 'अनमोल पत्र' (सत्यभक्त स्वामी), 'यूरोप के पत्र' (डॉ. धीरेन्द्र वर्मा), 'चिट्ठी–पत्री' (अमृत राय), 'निराला के पत्र' (जानकी बल्लभ शास्त्री) आदि। साहित्यकार साहित्यिक चर्चा तथा विभिन्न विषयों पर स्वचिन्तन एवं अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट करते हैं। ऐसे पत्र साहित्यिक विचार विनिमय और अनुभूतियों को व्यक्त करने के सशक्त माध्यम होते हैं। हिन्दी में साहित्यिक पत्र प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुए हैं। इस प्रकार के पत्रों में 'भारतमित्र' में प्रकाशित होने वाले बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशम्भु के चिटठे' तथा कौशिक द्वारा 'चाँद' में प्रकाशित 'दुबे जी की चिट्ठी' के नाम लिये जा सकते हैं। 'ज्ञानोदय' के पत्र अंक (1963) का साहित्यिक पत्रों में महत्वपूर्ण स्थान है। 'ज्ञानोदय' में डॉ. धर्मवीर भारती, नेमिचन्द्र जैन, उपेन्द्र नाथ अश्क, यशपाल, भँवर मल्ल सिंधी, कैलाश बाजपेयी, डॉ. जगदीश गुप्त, कुश्नचन्दर तथा डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के पत्र प्रकाशित हुए थे। 'ज्ञानोदय' में वर्मा जी द्वारा प्रकाशित साहित्यिक पत्रों में बहुआयामी जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण है जिससे पत्र विधा की अनेक सम्भावनाएँ परिलक्षित होती है।

कुल मिलाकर यह कहना समीचीन होगा कि साहित्यकार लक्ष्मीकान्त वर्मा जी के सम्पादकीय एवं पत्र साहित्य में अभिव्यक्त कथात्मक चिन्तन धारा एवं दर्शन के वर्णन में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक परिस्थितियों का चित्रण है। वर्मा जी के स्वतंत्र लेखन; साहित्य की सभी विधाओं में रुचि समीक्षा, आलोचना के क्षेत्र में नये मूल्यों के अन्वेषी किन्तु मुख्यतः कवि और सृजनशील साहित्य के प्रति आस्थावान चरित्र और चिन्तन का विवेचन मिलता है। पत्रकारिता में भागीदारी के साथ वर्मा जी के कई पत्रों का सम्पादन एवं विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में विशेष स्तम्भ लेखक के रूप में इन्हें ख्याति प्राप्त है। कार्यवाहक अध्यक्ष हिन्दी संस्थान उत्तर प्रदेश में वर्मा जी ने अपने को प्रतिष्ठापित किया है। अतः यह कहना उचित होगा कि श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा उच्च कोटि के सम्पादक, पत्र साहित्य सर्जक एवं सिद्धहस्त साहित्यकार रहे हैं।

निष्कर्ष

प्रो. लक्ष्मीकान्त वर्मा का सम्पादकीय जीवन नव्य काव्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। सम्पादक के रूप में वर्मा जी का सबसे अधिक लगाव अपने काव्य पर रहा। नये प्रतिमान : पुराने निकष, नया साहित्य : अर्थ संदर्भ, कवि सत्य : एक दृष्टिकोण, आधुनिक हिन्दी काव्य की नयी व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ, नयी कविता : मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि, पुस्तक समीक्षाए :, स्तर का अभाव, सौन्दर्य तत्व अनुभूति और व्यवस्था, ताजी कविता, कुछ जोड बाकी के सम्पादक के रूप में भी वर्मा जी ने अपने को नयी कविता से जोड़ा है। नयी कविता को उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित करने का संकल्प, पं. माखन लाल चतुर्वेदी का वरदहस्त और डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के दिशा निर्देश को इनके सम्पादकीय जीवन के प्रेरणा स्रोत के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

'परिचर्चा' के अन्तर्गत डॉ. देवराज, डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. शम्भूनाथ सिंह, श्री गिरिजा कुमार माथुर द्वारा 'नयी कविता की वर्तमान स्थिति' पर विचार व्यक्त किया गया है। इसी क्रम में 'नयी कविता' और पौराणिक प्रतीक' विषय पर कवि मलयज का, 'नयी कविता एक ऐतिहासिक अनिवार्यता' विषय पर जितेन्द्र नाथ पाठक का और 'लघु मानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस' विषय पर विजय देव नारायण शाही का लेख संकलित है। 'कवि सत्य : एक दृष्टिकोण' श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'परिचय : विपिन कुमार अग्रवाल', डॉ. रघुवंश, 'विशेष पर्तों की आवाज' श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा का लेख संकलित है। सव्याख्या के अन्तर्गत – शमशेर बहादुर सिंह की कविता– 'लौट आ ओ धार', 'वह जड़', 'किरण रेखा तिलक', 'सींग और नाखून', तथा कुँवर नारायण की कविता– 'पहले भी आया हूँ', 'सृष्टा', 'श्रावस्ती', 'कोणार्क', 'रास्ते' (फतेह पुर सीकरी) 'एक थी रानी', (फतेह पुर सीकरी) आदि की व्याख्या संकलित हैं। विशेष के अन्तर्गत लक्ष्मीकान्त वर्मा की कुछ महत्वपूर्ण कविताएँ संकलित हैं। जैसे– 'रचना क्रम में छूट गई एक कड़ी का आह्‌वान', 'एक कमकर के टिफिन– कैरियर में पायी गयी महाभिनिष्क्रमण की गाथा', 'डेड लेटर ऑफिस की टोकरी में पाया गया एक गुमनाम का दूसरे गुमनाम के प्रति पत्र', 'सरकारी अस्पताल में एक लावारिश लाश के सिरहाने टेम्प्रेचर चार्ट पर लिखा गया वक्तव्य', 'डायरी के पृष्ठ सौन्दर्य बोध – परचून की दूकान से प्राप्त', 'एक फेमली बजट : अपूर्ण आत्म–काव्य : 'कॉफी हाउस के एक इन्टेलेक्चुअल की बहस का सारांश : 'दर्जी के दूकान में पिछले कई वर्षों से पड़ी हुई शो–केस में कैद मूर्ति का वक्तव्य, 'होटेल की एक नेपकिन, जो अब इस्तेमाल नहीं होती, शीर्षक की लम्बी–लम्बी कविताएँ।

निष्कर्ष रूप में मैं यह कह सकती हूँ कि प्रत्येक कवि का अपनी अलग प्रतिभा होती है और उसी चिन्तन धारा से वह साहित्य का सृजन करता है। समग्र रूप से देखा जाय तो यह स्पष्ट होता है कि लक्ष्मीकान्त वर्मा की काव्यगत संवेदना, नवमानव की परिकल्पना, नव्यमानदण्डों की स्थापना, सम्पादकीय और पत्र साहित्य में आत्मकथात्य प्रसंगों की अभिव्यक्ति, इतना सब अनुभव कर यह कह सकती हूँ कि वे स्वातंत्रोत्तर युगीन रचनात्मकता के शिरोमणि आचार्य रहे हैं।

सन्दर्भ सूचि

1. माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली–2, पृष्ठ–12, सम्पादक श्रीकान्त जोशी.
2. माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली–3, पृष्ठ–12, सम्पादक श्रीकान्त जोशी.
3. एक झोपड़ी वाला (माखनलाल) कर्मवीर, 14 फरवरी, 1920.
4. आधुनिकताः कुछ विचार सूत्र, पृष्ठ 29, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
5. नये प्रतिमानः पुराने निकष, पृष्ठ 18, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
6. आधुनिकताः कुछ विचार सूत्र, पृष्ठ 33, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
7. साहित्य किसके लिए, पृष्ठ 40, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
8. साहित्य में शिव की कल्पना, पृष्ठ 43, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
9. नया साहित्यः अर्थ संदर्भ, पृष्ठ 45, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
10. श्लीलता–अश्लीलताः एक विवेचन, पृष्ठ 53–54, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
11. मानव मूल्यों के संदर्भ में लघु–मानव की कल्पना, पृष्ठ 61, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
12. कवि सत्यः एक दृष्टिकोण, पृष्ठ 84, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
13. ताजी कविताः कुछ जोड़ बाकी, पृष्ठ 173, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
14. अनुभूति और बोधमयी, पृष्ठ 173, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
15. अनुभूतिः प्रज्ञा और दृष्टि, पृष्ठ 143, लक्ष्मीकान्त वर्मा.